ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 92-96**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

आयुर्वेद – चिकित्सा का भारत बोध

डॉ0 ऋषभ कुमार,
सहायक आचार्य एवं विषयप्रभारी– इतिहास, जी.डी.बिनानी पी.जी. कॉलेज,(सम्बद्धः माँ विन्ध्यवासिनी विश्वविद्यालय) मीरजापुर (उ0प्र0), भारत

Received-18.01.2026, Revised-25.01.2026, Accepted-30.01.2026 **E-mail:rishabhbhu97@gmail.com**

सारांशः मानव सभ्यता के सभी क्रियाकलापों का आधार उसका स्वस्थ मन एवं शरीर है। भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव जीवन में स्वास्थ्य के महत्व को समझते हुए आयु अर्थात जीवन के ज्ञान को आयुर्वेद के रूप में विकसित किया गया। आयुर्वेद मानव सभ्यता को भारतीय सभ्यता एवं भारतीय ज्ञान परंपरा की अनुपम एवं अद्भुत देन है,जो सम्पूर्ण जगत के जीवों के स्वास्थ्य के विकास, संरक्षण एवं चिकित्सा का ज्ञान देता है। मानव के साथ आयुर्वेद पशुओं एवं वृक्षों के स्वास्थ्य के बारे में भी चिंतन करता हुआ पशु आयुर्वेद एवं वृक्ष आयुर्वेद के वैज्ञानिक ज्ञान परंपरा का अधिष्ठान करता है। मानव स्वास्थ्य का चिंतन करते हुए आयुर्वेद मानव जीवन की समस्त व्याधियों की चिकित्सा, उसके स्वास्थ्य के विकास, संरक्षण एवं रोग निवारण को अत्यंत ही समग्रता एवं एकीकृत रूप से उस आयु का ज्ञान वैज्ञानिक आधारों पर विकसित करता है। आयुर्वेद भारतीय ज्ञान परंपरा का केन्द्रीय घटक एवं समस्त विश्व को चिकित्सा का भारत बोध है, जो समस्त जीवों के कल्याण का सार्थक प्रयास करता है।

कुंजीभूत शब्द– आयुर्वेद, भारत बोध, भारतीय ज्ञान परंपरा, समग्र चिकित्सा, पशु आयुर्वेद, वृक्ष आयुर्वेद, निवारक स्वास्थ्य, सद्वृत्त।

प्रस्तावना– चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विज्ञान मानव समाज के लिए आधारभूत विज्ञान है। मानव समाज का अस्तित्व स्वास्थ्य विज्ञान पर पूर्णतः निर्भर है। जिन सभ्यताओं में स्वास्थ्य विज्ञान का विकास बेहतर तरीके से हुआ, उन सभ्यताओं ने जीवन के सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उपलब्धियाँ हासिल की। भारतीय सभ्यता प्राचीन काल से ही अत्यंत गौरवमयी एवं नेतृत्व करने वाली रही है जो एक बेहतर चिकित्सा पद्धति और पूर्ण विकसित स्वास्थ्य विज्ञान के बिना संभव नहीं था। प्राचीन काल में भारत आने वाले विदेशी यात्री भारतीय लोगों के स्वास्थ्य की प्रशंसा करते है। भारत में एक मनुष्य की सामान्य आयु 100 वर्ष मानी गयी है जो अपने आप में ही उच्च स्तर के विकसित स्वास्थ्य विज्ञान का प्रमाण है।

भारतीय सभ्यता ने प्राचीन काल से ही मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में उल्लेलखनीय और विश्वस्तरीय उपलब्धियेां को सहज रूप से प्राप्त किया है। जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों को भारतीय सभ्यता में महत्वपूर्ण एवं संतुलनकारी स्थान दिया गया है जिसको हम पुरूषार्थ एवं आश्रम व्यवस्था की संकल्पना में देख सकते हैं। जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास का शिखर प्राप्त करने के कारण ही भारत को विश्वगुरू की संज्ञा दी गई थी। इस क्रम में प्रकृति के विभिन्न विज्ञानों गणित, भौतिकी, चिकित्सा, रसायन के क्षेत्र में भारत ने विश्व को मागदर्शन प्रदान करने वाली उपलब्धियाँ हासिल की। गणित के क्षेत्र में भारत की दाशमिक पद्धति यूरोप में विकसित विज्ञानवाद के विकास का प्रमुख आधार बनीं। वहीं मानव जीवन के लिए आधारभूत एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण विज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र में भारत में विकसित आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति ने मानव सभ्यता को समग्र स्वास्थ्य विज्ञान एवं एक ऐसी चिकित्सा पद्धति दी जो वर्तमान में भी भारत सहित विश्व के कई देशों के लोगों को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हुए वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा को चरितार्थ कर रही है। यूं तो भारत भूमि की विशालता और विविधता ने जीवन के सभी क्षेत्रों में विविध जीवन प्रणालियों का विकास किया है परन्तु उनमें भी हमें एकता के लक्षण देखने को मिल जाते है।

आयुर्वेद का ऐतिहासिक विकास– आयुर्वेदिक साहित्य में प्राणिमात्र के तीन ऐषणाओं (चरक संहिता, सूत्रस्थान 11.1–3) की चर्चा की गई हैः प्राणएषणा, धनएषणा एवं परलोकएषणा। इन तीनों में प्राणएषणा सर्वप्रमुख है क्योंकि यही जीवन की अन्य सभी एषणाओं का आधार है। सुस्वास्थ्य प्राणिमात्र की सुखद संपदा है जिसे प्राप्त करने का प्रयास प्रत्येक काल और प्रत्येक क्षेत्र के मानव ने किया है। ((आर्य, 2000) स्वस्थ रहने एवं व्याधियों को दूर करने के लिए मानव अपनी ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग से अपने आस–पास के पर्यावरण, जीव–जन्तुओं, स्वयं के भीतर होने वाले परिवर्तनों तथा बाहरी जगत के साथ अंतःसम्बन्धों का निरीक्षण, विश्लेषण करके कुछ अवधारणाएँ बनाता है, कार्य–कारण सम्बन्धों की तलाश करता है, क्रमबद्धता की पहचान करता है तथा प्राप्त ज्ञान का यथासम्भव प्रयोग कर स्वास्थ्य विज्ञान का विकास करता है।

मानव ने स्वास्थ्य विज्ञान के विकास हेतु स्वास्थ्य से जुड़े कारण–परिणाम संबंधों की खोज की और उन्हें क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित किया। प्रयोग, परीक्षण और पर्यवेक्षण के आधार पर उसने इस ज्ञान को समाज के उपयोग योग्य बनाया। इसी प्रक्रिया में मनुष्य नई योजनाएँ तैयार करता है, नियम–विधान और उपनियम बनाता है, नए साधन विकसित करता है और उनके माध्यम से अपेक्षित स्वास्थ्य प्राप्त करने का प्रयास करता है। साथ ही, प्राप्त स्वास्थ्य की रक्षा व स्थायित्व सुनिश्चित करने के उपाय भी करता है।

जब समाज द्वारा बनाए गए नियम, उपनियम और विधियाँ सामूहिक बुद्धि के आधार पर परीक्षण और विश्लेषण के बाद स्वीकार कर ली जाती हैं, तो उन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। प्राचीन भारत में भी विभिन्न मनीषियों ने इंद्रियानुभव, तार्किक विवेचन, प्रयोग, वाद–विवाद सभाओं और संभाषा–परिषदों के माध्यम से स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान को क्रमबद्ध किया। इस व्यवस्थित ज्ञान को संहिताओं में लिपिबद्ध किया गया, जिसे भारतीय ज्ञान परंपरा में आयुर्वेद के नाम से जाना गया।

आयुर्वेद का इतिहास ही भारत के चिकित्सा शास्त्र का इतिहास है (कर्ण सिंह, पृ0 सं0–12, आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास)। प्राचीन काल में जब अन्य देशों और क्षेत्रों की चिकित्सा पद्धतियाँ जादू–टोने तक सीमित थी, तब भारत में आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति वैज्ञानिकता को प्राप्त करने की ओर अग्रसर थी। तत्कालीन समय में भारत में औषध द्रव्यों का अन्वेषण एवं प्रयोग तार्किक आधार पर होने लगा था। यह भी उल्लेखनीय है कि जब विश्व की प्राचीन चिकित्सा पद्धतियाँ वर्तमान में लुप्तप्राय और कुछ समाप्त हो गई, तब भी त्रिदोष एवं अन्य वैज्ञानिक सिद्धांतों की नींव पर खड़ा आयुर्वेद वर्तमान में भी भारत ही नहीं समस्त विश्व में हजारों वर्षों से आरोग्य प्रदान कर रहा है। आयुर्वेद केवल अनुभव पर आधारित चिकित्सा पद्धति नहीं है अपित इसके अपने सिद्धांत है जो कई वर्षों के प्रयोग, परीक्षण और संभाषा परिषदों में स्वीकृत होकर संहिताबद्ध हुए है जिनकी वैज्ञानिकता स्थापित है।

चरक और सुश्रुत संहिताओं में आयुर्वेद के ऐतिहासिक विकास को दैवीय उत्पत्ति से जोड़ा गया है। चरक संहिता के सूत्रस्थान के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण कर इसे दक्ष प्रजापति को प्रदान किया। प्रजापति से यह ज्ञान देववैद्य अश्विनी कुमारों तक पहुँचा और उनसे इन्द्र ने इसे ग्रहण किया। इस विवरण से स्पष्ट होता है कि प्रारंभ में आयुर्वेद देवलोक में

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

प्रतिष्ठित था। कालांतर में जब पृथ्वी पर विविध रोग उत्पन्न होने लगे, तो हिमालय के समीप भरद्वाज, आत्रेय जैसे महर्षि एकत्र हुए। सभी ने मिलकर आरोग्य के ज्ञान हेतु भरद्वाज को इन्द्र के पास भेजा। इन्द्र ने उन्हें आयुर्वेद का वह उपदेश दिया जिसमें स्वस्थ और रोगी दोनों के लिए हेतुज्ञान, लक्षणज्ञान और औषधि ज्ञान सम्मिलित था, जिसे त्रिसूत्र और शाश्वत माना गया। भरद्वाज से यह ज्ञान आत्रेय तक पहुँचा और आत्रेय ने इसे अपने छह शिष्योंकृअग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि को प्रदान किया। इनमें से सर्वप्रथम अग्निवेश ने इस उपदेश को तंत्र के रूप में संकलित कर ग्रंथ का स्वरूप दिया, जिससे आयुर्वेद का व्यवस्थित साहित्यिक रूप सामने आया। (कुमार, 2020)

आयुर्वेद को शाश्वत कहा गया है क्योंकि ब्रह्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति के पहले आयुर्वेद की रचना की थी। जब कोई वस्तु अनादि काल से परंपरा के द्वारा प्रवाहित होती रहती है और जिसका आदि और अन्त कहीं भी हो, पता नहीं चलता, वह शाश्वत होता है, जबकि नित्य में आदि–अन्त होता ही नहीं। उल्लेखनीय है कि आयुर्वेद को शाश्वत कहा गया है।

आयुर्वेद की दैवीय उत्पत्ति का उपर्युक्त आख्यान इतिहासकारों के बीच स्वीकार्य नहीं है। इतिहासकार दैवीय उत्पत्ति के आख्यान को लोकस्वीकार्यता हेतु रचित मानते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान विषयक इतना विस्तृत और जटिल ज्ञान एक व्यक्ति के उपदेशों पर आधारित नहीं हो सकता। संहिता–ग्रंथों में जिस ज्ञान को संहिताबद्ध किया गया है, वह कई आचार्यों के द्वारा लम्बे समय के परीक्षण और विश्लेषण के बाद प्राप्त संग्रहित ज्ञान है।

आयुर्वेद के ऐतिहासिक विकास को यदि देखा जाए तो यह मानव जीवन के उद्भव के साथ ही प्रारंभ माना जा सकता है, क्योंकि स्वास्थ्य मानव की मूलभूत आवश्यकता है। वैदिक काल से इसके क्रमिक विकास को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। ऋग्वेद में अश्विन देवताओं की स्तुति के माध्यम से दीर्घायु होने की कामना की गई है। अश्विनौ को देवताओं के चिकित्सक कहा गया है, जो शल्य चिकित्सा और काय चिकित्सा दोनों में निपुण थे। औषधियों के रूप में वनस्पतियों का वर्गीकरण सर्वप्रथम ऋग्वेद में ही मिलता है। वस्तुतः ऋग्वेद चिकित्सा की जादुई और धार्मिक पद्धति का प्रतीक है, जहाँ मुख्यतः ईश्वरीय शक्तियों की स्तुति द्वारा आरोग्य की प्रार्थना की जाती थी।

आयुर्वेद के विकासक्रम को समझने में अथर्ववेद एक महत्वपूर्ण स्रोत है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद कहा जाता है (सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान)। चरक संहिता में भी कहा गया है कि वैद्य को अथर्ववेद में अपनी रुचि बतानी चाहिए। अथर्ववेद में आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धांत त्रिदोषवाद का संकेत मिलता है तथा साथ ही शरीर–रचना, विभिन्न रोगों और उपचार के रुप में विभिन्न औषधियों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद से अथर्ववेद तक का काल स्तुतियों से औषधियों के बढ़ते प्रयोग का काल है। अथर्ववेदीय चिकित्सा–पद्धति संहिताग्रंथों में विकसित होने वाली युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा का प्रारंभिक रुप है। स्वास्थ्य और रोग की व्याख्या में त्रिदोषों के सन्तुलन और असंतुलन को कारण मानना चिकित्सा विज्ञान में तर्क की शुरुआत थी। इसी तर्क पद्धति पर आगे चलकर आयुर्वेद का विकास हुआ। आयुर्वेद के विकास के सम्बंध में अधिकतर विद्वान इस बात पर सहमत होते हैं कि द्वितीय सदी ई.पू. से द्वितीय सदी ई. के बीच अग्निवेशतंत्र प्रतिसंस्कृत होकर चरक संहिता के रुप में प्रसिद्ध हो गई, जो आयुर्वेद के विकास का उन्नत प्रमाण है।

वैदिक कालीन साहित्य में अश्विनौ के चिकित्सा चमत्कारों का उल्लेख भी मिलता है जो चिकित्सा के क्षेत्र में भारतीयों की उन्नत मेधा का परिचायक है। अश्विनौ वैदिक काल में प्रसिद्ध चिकित्सक थे जो कायचिकित्सा और शल्यचिकित्सा दोनों ही विधाओं में पारंगत थे। अश्विनौ मानव चिकित्सक होने के साथ ही साथ पशुओं की चिकित्सा भी करते थे। अश्विनौ ने प्रसवयोग्य न होने पर भी गायों को प्रसवित्रि और प्यस्विनी बनाया। ऋषि परावृक को अंधे से चक्षुसंपन्न बनाया और पंगु से गमनशील बनाया। खेल राजा की संबंधिनी स्त्री विशाला को अयस की जांघ दी। कलि को बूढ़े से जवान बनाया और दीर्घायु किया। अन्धे कण्व को दृष्टि प्रदान किया। तत्कालीन समय में अश्विनौ के चिकित्सा कार्यों का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि उस समय तक भारतीयों ने शल्य चिकित्सा सहित चिकित्सा के विविध आयामों में उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की थी। अश्विनौ वैदिक काल में आदर्श वैद्य की तरह प्रतीत होते थे। समस्त जीवों के कल्याण हेतु चिकित्सा कार्य अत्यंत कुशलता और दक्षता के साथ करते थे।

मौर्य काल से कुषाण वंश के काल तक साम्राज्य –प्रसार और बौद्ध धर्म के प्रसार से आयुर्वेद का प्रसार भारत के बाहर मध्य एशिया, श्रीलंका, तिब्बत आदि देशों में हुआ। मध्य एशिया से इसी समय का नावनीतकम् नामक चिकित्सा दस्तावेज मिला है जिसे बावर पाण्डुलिपि भी कहते हैं। इसके बाद आयुर्वेद के विकास का स्वर्णिम काल गुप्तकाल था। गुप्त काल में ही आयुर्वेद के आधारभूत ग्रंथों चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता का संकलन पूर्ण हुआ। आयुर्वेद के अन्तर्गत सुश्रुत संहिता के मूल रचनाकार सुश्रुत को समस्त विश्व में शल्य चिकित्सा का पिता माना जाता है। सुश्रुत संहिता शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में समस्त विश्व के लिए भारतीय चिकित्सा विज्ञान की अमूल्य देन है। सुश्रुत संहिता में ही सर्वप्रथम कास्मेटिक सर्जरी, रक्तस्कंदन विधि, आपातकालीन चिकित्सा, जलने की चिकित्सा विधि आदि का उल्लेख मिलता है। सुश्रुत संहिता सहित भारतीय आयुर्वेद की छिन्न नासिक और ओष्ठ की शल्य क्रिया को देखकर औपनिवेशिक काल में पश्चिमी विद्वानों ने अत्यंत आश्चर्य किया।

1794 में पश्चिमी विद्वान टामस कूसी और जेम्स फिन्डले ने एक मराठी वैद्य द्वारा नासिका की शल्य क्रिया को देखा गया। पश्चिमी विद्वानों ने इस आश्चर्यजनक कार्य को लंदन के जेण्टलमैंस मैगजीन में चित्र सहित प्रकाशित किया। इसी के कुछ समय बाद इंग्लैण्ड के जे सी कार्पु ने 1814 में प्रथम नासासंधानीय शलयकर्म किया। इसी के पश्चात ही पश्चिमी विद्वानों ने भारतीय चिकित्सा का सीखने के उद्देश्य से अध्ययन करना प्रारम्भ किया। सुश्रुत संहिता में शल्य क्रिया के संबंध में महत्वूपर्ण योगदान उपकरणों के संबंध में है। सुश्रुत संहिता में कुल 120 प्रकार के शल्य उपकरणों एवं 600 से ज्यादा शल्य प्रक्रियाओं का विवरण दिया गया है जिसकी महत्ता को भारत ही नहीं समस्त विश्व स्वीकार करता है। सुश्रुत संहिता में वर्णित शल्य उपकरण आज भी परिवर्तनों के साथ आधुनिक शल्य कक्षों में देखे जा सकते है। (कुमार, 2020)

प्राचीन काल आयुर्वेद के विकास और मानकीकरण का सर्वोच्च काल था जो गुप्त काल में अष्टांग आयुर्वेद और वृहत्त्रीय एवं लघुत्रयी के अस्तित्व के साथ चरम पर था। मध्यकाल की शुरूआत में आयुर्वेद का विकास लगभग स्थिर हो चुका था। आयुर्वेद के क्षेत्र में बौद्धिक उर्जा और शोध अब अतीत की बातें हो चुकी थी। इसके साथ ही इस्लाम के आगमन का भी प्रतिकूल प्रभाव आयुर्वेद की स्थिति पर पड़ा क्योंकि नये शासकों ने अरबी और यूनानी चिकित्सा पद्धति को प्रश्रय दिया। फलतः आयुर्वेद आगे अपेक्षित विकास नहीं कर सका। फिर भी मध्यकाल में आयुर्वेद के पुराने ग्रंथों को अद्यतन करने के लिए संहिता ग्रंथों पर चक्रपाणिदत्त आदि के द्वारा टीकाएँ लिखी गई। कई आयुर्वेदिक ग्रंथों का प्रतिसंस्कार कर उसमें नयी चीजो को जोड़ा गया। इसी काल में शाडंग्धर संहिता,

भावप्रकाश जैसी महत्वूपर्ण और प्रसिद्ध आयुर्वेदीय ग्रंथों की रचना भी हुई। आयुर्वेद में रसशास्त्र और रसचिकित्सा के साथ चिकित्सा में धातु का प्रयोग भी मध्यकाल में देखने को मिलता है। राजकीय संरक्षण के अभाव और प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी आयुर्वेद स्वयं को सुरक्षित करने और भारत की आम जनता को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता रहा।

आयुर्वेद के समक्ष प्रमुख चुनौती ब्रिटिश शासन के आगमन के पश्चात शुरू हुई। आधुनिक पश्चिमी चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रसिद्ध एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति का आगमन भारत में पुर्तगाली व्यापारियों के साथ पश्चिमी तट के क्षेत्र में हुआ। पुर्तगाली व्यापारी अपने साथ अपने डाक्टर लेकर आये और एलोपैथी चिकित्सा पद्धति को बढ़ावा देना शुरू किया। कालांतर में ब्रिटिश कंपनी द्वारा भारत की राजनीतिक सत्ता हथिया लेने के बाद ब्रिटिश सरकार ने शासकीय नीतियों का प्रयोग आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को समाप्त करने के लिए किया। अंग्रेजों ने आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को अंधविश्वास पर आधारित और अवैज्ञानिक करार देकर इसे पूरी तरह नकार दिया और एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति की संज्ञा देकर लोकप्रिय बनान शुरू किया। आयुर्वेदिक वैद्यों को आयुर्वेद का प्रयोग करने से हतोत्साहित किया गया। आयुर्वेदिक गुरूकुलों को निषिद्ध करते हुए बन्द किया गया। भय के कारण बहुत से वैद्यों ने आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग करना बंद कर दिया। अंग्रेजों द्वारा कई बार भारतीयों के औषधि बगीचों को भी नष्ट किया गया। ब्रिटिश काल में आयुर्वेद का प्रयोग मुख्यतः गांवों में होता था जिसे गरीबों की चिकित्सा पद्धति कहा जाने लगा था। ब्रिटिश शिक्षा नीति के माध्यम से एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के अध्ययन और प्रशिक्षण की भारत में शुरूआत की गई। इन सबका परिणाम ब्रिटिश काल में आयुर्वेद की अवनति के रूप में सामने आयी। एक तरफ अंग्रेजों ने आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहते हुए चिकित्सा पद्धति के रूप में नकार दिया वहीं दूसरी तरफ आयवेुर्दिक ग्रंथों को इकट्ठा कर ब्रिटिश द्वारा उनका अनुवाद किया गया और उन्हें लंदन भी भेजा गया। आयुर्वेदिक ग्रंथों के सिद्धांतों और ज्ञान का उपयोग भी अंग्रेजों द्वारा किया गया परन्तु कभी भी आयुर्वेद की प्रशंसा अंग्रेजों के द्वारा नहीं की गई। विलियम बैंटिक द्वारा भारतीय चिकित्सा व्यवस्थाओं को दी जाने वाली सहायता को बन्द कर दिया गया। इस चुनौती के जवाब में भारतीयों ने आयुर्वेद को पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के समक्ष वैज्ञानिक और तार्किक रूप से व्यवस्थित करने के लिए व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक प्रयास करने प्रारम्भ किये। वैद्य गंगाधर राय, गंगाप्रसाद सेन आदि के प्रारम्भिक प्रयासों से आयुर्वेद की लोकप्रियता बढ़ने लगी। आयुर्वेद के ज्ञान परम्परा पर होने वाले नवीन शोधों के प्रकाशन से आयुर्वेद की स्वीकार्यता में वृद्धि होने लगी। भारतीय वैद्यों ने औपनिवेशिक काल में आयुर्वेद के संरक्षण और विकास के लिए 1907 में अखिल भारतीय आयुर्वेद कांग्रेस का आयोजन नासिक में किया। अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थापना 1908 में हुई एवं इसके पश्चात कई आयुर्वेदिक कॉलेजों की स्थापना भी भारतीयों द्वारा की गई जिनमें गुरूकुल कांगड़ी आयुर्वेद कॉलेज हरिद्वार, तिलक आयुर्वेद कॉलेज पूना आदि प्रमुख थे। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान स्वदेशी के चिकित्सा क्षेत्र में प्रसार एवं मदन मोहन मालवीय जैसे प्रखर राष्ट्रवादी नेताओं के प्रयास से आयुर्वेद की उन्नति एवं नवीन विकास की धारा तेजी से आगे बढ़ी।

आयुर्वेद का स्वास्थ्य दर्शन– आयुर्वेद का अर्थ हैः आयु का ज्ञान। आयुर्वेद में आयु के चार घटकः शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा को माना गया है। आयु को ही जीवित या जीवन कहा जाता है। आयुर्वेद में इसी आयु से सम्बन्धित समस्त विषय आयु की उत्पत्ति, आयु का विकास, उसका संरक्षण, व्याधि निवारण आदि का अध्ययन एवं स्वास्थ्य का सुनिश्चयन किया जाता है। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आयर्वेद की दृष्टि अत्यंत व्यापक है। सर्वप्रथम तो आयुर्वेद स्वास्थ्य के अन्तर्गत शारीरिक स्वास्थ्य के साथ ही मानसिक स्वास्थ्य को भी समाहित करता है जबकि आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों में अभी 300 वर्षों से मानसिक चिकित्सा पर बल दिया जा रहा है। स्वास्थ्य के प्रति सम्पूर्ण दृष्टिकोण के दर्शन उस समय भी होते है जब आयुर्वेद आध्यात्मिक स्वास्थ्य की संकल्पना का जिक्र भी करता है।

आयुर्वेद के संहिता ग्रंथों में उल्लिखित आयु के चार घटक की संकल्पना आयुर्वेद में स्वास्थ्य की अवधारणा को व्यापक और सम्पूर्ण बनाते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य की प्रत्येक संकल्पना रोग, रोगों के कारण और उनकी चिकित्सा सहित निवारक चिकित्सा में भी समग्रता के दर्शन होते है। आयुर्वेद में शरीर और मन दोनों को रोगों का आश्रय माना गया है। चरक संहिता वात्, पित्त एवं कफ को शरीर दोष तो सत्व, रज एवं तम को मानसिक दोष के रूप में वर्गीकृत करता है। शरीर दोषों की औषधि दैवव्यपाश्रय एवं युक्तिव्यपाश्रय तथा मानसिक रोगों के उपचार हेतु ज्ञान, विज्ञान, समाधि आदि का निर्देश दिया गया है।

आयुर्वेद स्वास्थ्य और रोग को जीवन के दो महत्पूर्ण चरण मानता है। आयुर्वेद का सर्वप्रथम उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण एवं सवंर्द्धन करना है, रोगों को होने से रोकना एवं रोग होने पर उनका उपचार करना है। आयुर्वेद का दर्शन सर्वजन हिताय को सुनिश्चित करता है। सुखायु और दुखायु की संकल्पना के माध्यम से आयुर्वेद न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य को महत्व देता है बल्कि हितायु और अहितायु की संकल्पना से उस व्यक्ति को सामाजिक हित से जोड़ता है। उस आयु को हितायु कहा जाता है जो समाज के लिए लाभदायक हो और इसके विपरीत अवस्था को अहितायु की संज्ञा दी गई है।

आयुर्वेद का एक विशिष्ट स्वास्थ्य दर्शन निवारक चिकित्सा पर बल देना है। निवारक चिकित्सा आयुर्वेद को अन्य चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में अद्वितीय और अत्यंत विशिष्टि बनाती है। आयुर्वेद का प्रमुख प्रयोजन स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण और उसकी सुरक्षा ही बताया गया हैं। आयुर्वेद का निवारक स्वास्थ्य दर्शन कई संकल्पनाओं को समाहित किये हुए है। निवारक चिकित्सा को आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त की संज्ञा दी गई है, जिसमें दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, उपस्तम्भ (आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य) प्रमुख घटक समाहित है। जहाँ स्वस्थवृत्त निवारक शारीरिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करता है वहीं निवारक मानसिक स्वास्थ्य का सुनिश्चयन आयुर्वेद में सद्वृत्त, धारणीय वेग विधारण एवं आचार रसायन के माध्यम से करने का निर्देश आयुर्वेद में दिया गया है। सद्वृत्त का सामान्य अर्थ सज्जनों का कर्तव्य बताया गया है। सद्वृत्त मानव को अपना जीवन उचित और नियमबद्ध तरीके से जीने की वकालत करता है ताकि उसकी आयु स्वस्थ, संरक्षित होकर सवंर्द्धित होती रहे। सद्वृत्त के अन्तर्गत प्रतिदिन दोनों समय स्नान करना, स्वच्छ वस्त्र पहनाना, तैलाभ करना, व्यायाम, भोजन और पान के अति से बचना, भोज्य पदार्थों को देश, काल, परिस्थिति के अनुसार ग्रहण करना, रागद्वेषमुक्त रहना, सत्य बोलना, सहिष्णु, मितभाषी, निन्दा न करना, अभिमान न करना, ईर्ष्या न करना, लोभ और मोह से दूर रहना, स्त्रियों का अपमान न करना, आचार्य एवं सिद्ध पुरूषों का सम्मान करना, मद्यपान न करना आदि अन्य बातें समाहित सद्वृत्त निर्देश जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित है जो जीवन को सुखमय बनाने और व्याधिमुक्त करने के उद्देश्य से निर्देशित की गई है। सद्वृत्त मानव के स्वास्थ्य को जीवन जीने के मार्ग के रूप में स्थापित करती है जिसका पालन करने पर मानव स्वास्थ्य का सुनिश्चयन हो पाता है। विधारणीय वेग के सम्बन्ध में चरक संहिता में कहा गया है कि अपना हित चाहने वाले पुरूष को चाहिए कि वह इस जन्म में तथा जन्मांतर में निम्नलिखित वेगों को रोकने का प्रयत्न करे– साहस, मन, वचन एवं शरीर द्वारा अशस्त कर्म करना, लोभ, भय, क्रोध,

अहंकार, निर्लज्जता, राग, परधन इच्छा, परस्त्री संभोग, चोरी, हिंसा आदि। उक्त वर्णित सभी धारणीय वेग है। जबकि अधारणीय वेग के अन्तर्गत उक्त वर्णित सभी धारणीय वेग है। जबकि अधारणीय वेग के अन्तर्गत भूख, प्यास, मूत्र, पुरीष, वीर्य आदि आते हैं जिनके होने पर मनुष्य को दूसरे कार्यों में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

आयुर्वेद मात्र रोगों की चिकित्साा से सम्बन्धित नहीं है अपितु यह स्वास्थ्य के विकास और संरक्षण पर चिकित्सा से ज्यादा बल देता है। आयुर्वेद के स्त्रोत ग्रंथों में आयुर्वेद का प्रयोजन बताते हुए कहा गया है कि आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन प्राणियों के स्वास्थ्य की रक्षा करना है एवं द्वितीय स्वास्थ्य में व्याधि आने पर अर्थात रोग होने पर उसकीी चिकित्सा करना।चरक संहिता में स्पष्टतः कहा गया है कि स्वस्थ मनुष्य को चाहिए कि वे यदि नीरोग रहना चाहते है तो स्वस्थवृत्त के नियमों का पालन करें क्योंकि चिकित्सा करने की अपेक्षा रोग को न होने देना ही उत्तम है। आगे पुनः कहा गया है कि आरोग्य की आकांक्षा रखने वाले को रोगों के होने से पूर्व अथवा तरूणावस्था में औषधियों से प्रतिकार करना चाहिए।

पशु आयुर्वेद– भारतीय सभ्यता में सभी पशुओं को मानवों के समान ही महत्वूपर्ण और सम्माननीय स्थान दिया गया है। भारत में पाये जाने वाले अधिकांश पशु को किसी न किसी देवी या देवता से सम्बन्धित किया गया है। समाज के लिए उनकी उपयोगिता को देखते हुए भारत की चिकित्सा पद्धति में पशुओं की चिकित्सा का उल्लेख भी विस्तार से मिलता है। पशुओं की चिकित्सा के उपर कई विस्तृत ग्रंथ भी लिखे गये है। आयुर्वेद में सर्वप्रथम पशुओं का सम्बन्ध औषिधियों से किया गया है। पशुओं से प्राप्त होने वाली औषधियों को जांगम की संज्ञा दी गई है। औषधि के दृष्टिकोण से पशु समाज के लिए अत्यंत उपयोगी थे, इसलिए प्रारंभ से ही उनके स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त सामाजिक उपयोग के दृष्टिकोण से मानव की प्रतिदिन आवश्यकताओं दूध, मांस, चर्म, बोझा ढोने, मनोरंजन, कृषि कार्य आदि के साथ ही सैन्य आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से भी पशु समाज के लिए अत्यंत आवश्यक थे। मानव के साथ पशुओं का सहचर एवं सहकार का सम्बन्ध था। पशु प्राचीन काल से ही मनुष्यों का उपकार करते रहें है। अश्व या श्वान प्रारंभ से ही मनुष्य के स्वामीभक्त रहें है और कई बार अपनी जान देकर मानव की जान बचायी है। शुक–सारिका मृग, मयूर, कोयल आदि मनोरंजक पक्षी के रूप में मानवों के प्रिय रहे। मानव समाज के अत्यंत उपयोगी एवं सहकारी होने की वजह से ही पशुओं की चिकित्सा पर ध्यान देना आवश्यक था। भारतीय सभ्यता इस मामले में विश्व से कहीं आगे रही और पशुओं के लिए पृथक चिकित्सा शास्त्र का विकास कर इस क्षेत्र में स्वयं को शिखर पर स्थापित किया। भारत में पशुओं की चिकित्सा करने वाले को ही उत्तम चिकित्सक माना गया है। मानसोल्लास में कहा गया है कि जो मनुष्यों की, हाथियों की, घोड़ों की, गायों की, मृगों की तथा पक्षियों की चिकित्सा करना जानता है वही चिकित्सक है। (मानसोल्लास 2/3/138) शुरूआती समय में मानव चिकित्सक ही पशुओं की चिकित्सा करते थे। कालांतर में पशुओं के उपयोगी स्वरूप को देखते हुए पशु चिकित्सा के स्वतंत्र उपांग विकसित हुए जैसेः गवायुर्वेद, अश्वायुर्वेद, मृगपक्षि शास्त्र आदि।

यदि हम विशेष दृष्टिकोण से देखें तो आयुर्वेद के विकास में पशुओं की महती भूमिका रही है। आयुर्वेद की बहुतेरे औषधियां पशुओं पर प्रयोग के पश्चात ही मानव प्रयोग में लायी गयी। यहीं नहीं पशुओं का प्रयोग शरीर रचनाविज्ञान को समझने में भी किया गया। इसीलिए चरक संहिता में स्पष्टतः इस बात का निर्देश दिया गया है कि औषधियों की जानकारी और उनके नाम की जानकारी पशुपालकों को रहती है। कई आयुर्वेदीय औषधियों का नाम पशु पक्षियों से सम्बन्धित भी इसी कारण रहा है। जैसे मूषाकरणी, श्रृंगालविन्त्रा, हंसपदी, अश्वगंधा, काकमाची, सर्पगन्धा आदि। इसके साथ ही आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रक्रियाएँ भी पशुओं को देखकर विकसित की गयी है। जैसे वस्ति चिकित्सा एक पक्षी द्वारा चोंच से जल गुदामार्ग में डाल कर बद्धमल को विसर्जित करते हुए देख कर बनी।

भारत में मानव चिकित्सा से अलग स्वतंत्र रूप में मुख्यतः तीन भागों में पशु चिकित्सा का विकास हुआ।

1. **मृग चिकित्सा**– मृग, अज, मेष, कुक्कुरादि की चिकित्सा।
2. **पक्षि चिकित्सा**– पंख वाले पक्षियों की चिकित्सा।
3. **पशु चिकित्सा**– गज, अश्व, गौ आदि की चिकित्सा।

इन सबमें मुख्यतः गज, अश्व और गौ चिकित्सा सर्वाधिक रूप से विकसित हुई क्योंकि यहीं सामाजिक उपयोग के प्रमुख पशु थे। गज और अश्व सैनिक उपयोग के तो गौ सभी गृहस्थों के यहाँ उपयोग में लाई जाने वाले पशु थे। वैदिक ग्रंथों में उल्लिखित गजशान्ति, गौशान्ति, अश्वशान्ति का सम्बन्ध पशु चिकित्सा से ही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी अश्वाध्यक्ष, गजाध्यक्ष आदि का एवं उनके चिकित्सकों को उल्लेख है। महान सम्राट अशोक के शिलालेखों से हमें पशु चिकित्सा के लिए अस्पतालों का संकेत प्राप्त होता है। अल्बरूनी और मेगस्थनीज ने भी अपने ग्रंथों में पशु चिकित्सा का उल्लेख किया है।

सर्वप्रथम यदि हम अश्व चिकित्सा की चर्चा करें तो हमें इस विषय पर अत्यंत ही विस्तृत ग्रंथ अश्वायुर्वेद प्राप्त होता है जिसे हयायुर्वेद, तुरंग आयुर्वेद, शालिहोत्र संहिता के नाम से भी जाना जाता है। अपूर्ण रूप से प्राप्त इस ग्रंथ की रचना शालातुर (गांधार के समीप) के रहने वाले हयघोष के पुत्र शालिहोत्र द्वारा की गई थी। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथों की तरह शालिहोत्र संहिता आठ स्थानों में विभाजित है जिसमें कुल 1200 श्लोक है। उक्त प्रमुख ग्रंथ के अतिरिक्त शालिहोत्र अश्वशाला नाम का संस्कृत ग्रंथ मद्रास और नेपाल से प्राप्त है। इसके अतिरिक्त भोज का शालिहोत्र, कल्हण रचित शालिहोत्र, दीपंकर का अश्ववैद्यक अश्व चिकित्सा पर लिखे गये अन्य ग्रंथ है। महाभारत एवं पुराणों में भी अश्व चिकित्सा के कई उल्लेख प्राप्त होते है। अन्य ग्रंथों में तुरंग परीक्षा, शरसंग्रह, अश्वशास्त्र आदि भी उल्लेखनीय है।

वृक्ष आयुर्वेद– चिकित्सा के क्षेत्र में भारत बोध समस्त विश्व में अतुलनीय है। भारतीय सभ्यता में विकसित आयुर्वेद न केवल मनुष्यों के आयु की बल्कि पशु आयुर्वेद के रूप में अन्य जीवों की तथा वृक्षायुर्वेद के रूप में वनस्पतियों को भी जीव मानकर उनके आयु के सम्बन्ध में समग्र चिन्तन करता है। वृक्षायुर्वेद का विषय वृक्ष कैसे उत्पन्न होते है वृक्षायुर्वेद का विषय वृक्ष कैसे उत्पन्न होते है, किस प्रकार विकास करते हैं, विकास में क्या बाधाएँ आती है, अच्छे वृक्षों को कैसे उत्पन्न किया जाए, वृक्षों के लिए किस प्रकार की भूमि, जलवायु, ऋतु, उर्वरक की आवश्यकता होती है आदि सभी चीजें आदि सभी चीजें है। वृक्षायुर्वेद शब्द का सर्वप्रथम उपयोग कौटिल्य की पुस्तक अर्थशास्त्र में मिलता है। पाणिनी की पुस्तक अष्टाध्यायी, महाभारत एवं जातक कथाओं में वृक्षायुर्वेद वृक्षायुर्वेद के विषयों का समावेश मिलता है। अग्निपुराण में धन्वन्तरि को वृक्षायुर्वेद का उपदेष्टा माना गया है। इन सबके अतिरिक्त वृक्षायुर्वेद विषय पर पूर्ण रूप से सूरपाल रचित वृक्षायुर्वेद उक्त विषय पर महत्वपूर्ण कृति है। 12वीं सदी में बंगाल के सूरपाल ने यह ग्रंथ लिखा था। वर्तमान में यह ग्रंथ बोधायन पुस्तकालय में सुरक्षित है। 13 अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ में कुल 325 श्लोक है। ग्रंथ में तरूओं की

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

महिमा, ज्योतिष एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोंण से वृक्षों को लगाने का लाभ, भूमि के प्रकार, वृक्षों का रोपण, सिंचाई, रोगों एवं उनकी चिकित्सा, उपवन निर्माण आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष– भारतीय ज्ञान परंपरा में चिकित्सा के विकास को देखा जाए तो अन्य देशों की तुलना में भारत में मानव ही अपितु पशुओं और वृक्षों के लिए भी चिकित्सा पद्धति का विकास पूर्ण अंगों, सिद्धांतों और ग्रंथ निर्माण के साथ प्राचीन काल में ही हो चुका था। चिकित्सा के क्षेत्र में सभी जीवों की चिंता करता हुआ आयुर्वेद समस्त विश्व के लिए उत्कृष्टतम् भारत बोध है और भारतीय ज्ञान परंपरा का केन्द्रीय घटक भी है। भारतीय ज्ञान परंपरा आयुर्वेद के उल्लेख के बिना अधूरी है। भारत में आयुर्वेद के अतिरिक्त एलोपैथी, होम्योपैथी, यूनानी, सिद्ध, सोवा रिग्पा, नेचुरोपैथी की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित है। इन सभी में सर्वाधिक उत्कृष्ट और भारतीय स्वास्थ्य दर्शन के रूप में आयुर्वेद समग्र स्वास्थ्य विज्ञान एवं चिकित्सा पद्धति है। आयुर्वेद समस्त जीवधारियों एवं जीवों के समस्त जीवन और समस्त क्षेत्रों के हित को सुनिश्चित करते हुए जीवन पद्धति के रूप में स्वास्थ्य विज्ञान एवं चिकित्सा को प्रोत्साहन देता है जो वर्तमान समय में समस्त विश्व के लिए प्रासंगिक और उपयोगी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री0 ए0 डी0. 2018, सुश्रुतसंहिता आयुर्वेदतत्त्वदीपिका हिन्दीव्याख्या वैज्ञानिकविमर्शोपेता भाग–एक, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. शास्त्री0 ए0 डी0. 2018, सुश्रुतसंहिता आयुर्वेदतत्त्वदीपिका हिन्दीव्याख्या वैज्ञानिकविमर्शोपेता भाग–दो, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. विद्यालंकार, जे0. 2012, चरक संहिता महर्षिणा भगवताग्निवेशेन महामुनिना चरकेण प्रतिसंस्कृता–पूर्वो भागः.मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. विद्यालंकार, जे0. 2012, चरक संहिता महर्षिणा भगवताग्निवेशेन महामुनिना चरकेण प्रतिसंस्कृता–उत्तरो भागः, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
5. उपाध्याय, बलदेव (संपा.) 2006, संस्कृत वांड्मय का बृहद् इतिहास – सप्तदश खण्ड आयुर्वेद का इतिहास. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
6. सोनी, सुरेश. 2005, भारत में विज्ञान की उज्जवल परंपरा, अर्चना प्रकाशन, भोपाल।
7. शर्मा, पी0. 2012, आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, पुनर्मुद्रित संस्करण, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी।
8. कुमार, ऋषभ. 2020, प्राचीन भारत में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान (चरक एवं सुश्रुत संहिता के विशेष सन्दर्भ में) (अप्रकाशित पी–एच. डी. थीसिस) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
9. शर्मा, पी0. 1992, हिस्ट्री ऑफ मेडिसिन इन इण्डिया फ्राम एंटीक्विटी टू 1000 ई0, इण्डियन नेशनल साइंस एकैडमी, नई दिल्ली।
10. लोचन, के0. 2003, मेडिसिन्स ऑफ अर्ली इण्डिया, चौखंभा संस्कृत भवन, वाराणसी।
11. फिलियोजट, जे0. 1964, दी क्लासिकल डाक्ट्रिन ऑफ इण्डियन मेडिसिन, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली।
12. मजूमदार, आर0सी0. 1971, मेडिसिन; ए कान्साइज हिस्ट्री ऑफ साइंस इन इण्डिया. इण्डियन नेशलन साइंस एकैडमी, नई दिल्ली।
13. सिंह, आर0एच0 और उडुपा, के0एन0. 1996, साइंस एण्ड फिलासाफी ऑफ इण्डियन मेडिसिन, बैद्यनाथ आयुर्वेदिक भवन, नागपुर।
14. सिंह, आर0. 2011, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
15. सक्सेना, एस0. 2002, विभिन्न चिकित्साओं का सरल परिचय, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
16. शास्त्री, आर0. 1988, भारत के प्राणाचार्य, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
17. रैना, बी0एल. 1990, हेल्थ साइंस इन ऐन्शिएंट इण्डिया. कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
18. लोचन, के0. 2003, मेडिसिन्स ऑफ अर्ली इण्डिया, चौखंभा संस्कृत भवन, वाराणसी।
19. भागवत, एस0. 1981, आर्यन मेडिकल साइंसः अ शार्ट हिस्ट्री, रेयर रिप्रिंट्स. दिल्ली।
20. जग्गी, ओ.पी. 1973, हिस्ट्री ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलाजी इन इण्डियाःइण्डियन सिस्टम ऑफ मेडिसिन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
21. मुखोपाध्याय, जी0. 1974, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिसिन तीन वाल्यूम, आरियेण्टल बुक्स, दिल्ली।
22. म्यूलेनबेल्ड, जी0जे0. 1999, अ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिकल लिटरेचर वाल्यूम 1ए टेक्स्ट, एजबर्ट फार्स्टन, ग्रानिनगेन नीदरलैण्ड।
23. माजर्स, जी. 2006, अ कानसाइज इंट्रोडक्शन टू इण्डियन मेडिसिन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली।

*****